लौट आओ दीपशिखा

संतोष श्रीवास्तव

लौट आओ दीपशिखा

(उपन्यास)

संतोष श्रीवास्तव

गुलमोहर के साये में स्थित वह खूबसूरत बंगला जो 'गौतम शिखा कुटीर' के नाम से मशहूर था और जो कभी रौनक से लबरेज़ हुआ करता था आज सन्नाटे की गिरफ़्त में है और उसके भीतरी दरवाज़े और काले स्टील के कंगूरेदार गेट पर सरकारी ताले लटक रहे हैं। शेफ़ाली कितनी बार इस गेट से पार हुई है। बंगले का कोना-कोना उसका परिचित है और उसकी मालकिन मशहूर चित्रकार उसकी बचपन की दोस्त दीपशिखा... उसकीहर अदा, हर ख़ासो आम बात की राज़दार है वह। ज़िन्दग़ी का ये हश्र होगा सोचा न था। ये सरकारी ताले उसके दिमाग़ में अंधड़ मचा रहे हैं। वह तहस-नहस हो जाती है। उसकी नींदें दूर छिटक जाती हैं और चैन हवा हो जाता है। क्या इंसान इतना बेबस-लाचार है? क्या वो सबके होते हुए भी लावारिस और तनहा है?

कितनी दर्दनाक थी वह सुबह जब अलार्म की जगह फोन की घंटी बजी थी..... इतनी सुबह!!! घड़ी पर नज़र गई। आठ बज रहे थे यानी शेफ़ाली ही ज़्यादा सो ली। लौटी भी तो थी हफ़्ते भर के टूर से। शौक ही ऐसा पाला है उसने। चित्रों की प्रदर्शनी के लिए अब बुलावे आने लगे हैं। पाँच साल के आर्यन और तीन साल की प्राजक्ता को घर की देखभाल करने वाली काकी के भरोसे छोड़ वह नौकरी और अपने टूर में व्यस्त रहती है। बीस दिन घर में तो दस दिन बाहर। तुषार को भी बड़े-बड़े केसेज़ के इलाज के लिए देश विदेश बुलाया जाता है। बूढ़े सास ससुर की घर में मौजूदगी ही शेफ़ाली की निश्चिन्तता के लिए काफ़ी है। फोन बजकर शांत हो गया था। शेफ़ाली ने एक लम्बी अंगड़ाई लेते हुए हमेशा की तरह आवाज़ दी – "काकी, चाय।" काकी पाँच मिनिट में चाय बना लाई।

"आर्यन, प्राजक्ता सो रहे हैं क्या?"

"जी भाभी... दो बार गौतम सर का फोन आ चुका है।"

"अरे, ऐसी क्या बात हो गई, देना मेरा मोबाइल।" मोबाइल मुश्किल से लगा- "क्या हुआ गौतम? दीपू ठीक तो है?"

"सब कुछ ख़तम हो गया शेफ़ाली.... मेरी शिखा हमेशा के लिये चली गई।" उसकी आवाज़ पथराई हुई थी।

"क्याऽऽऽ कब, कैसे? अभी बुध की सुबह ही तो हैदराबाद से फोन पर बात हुई थी उससे। मैं आ रही हूँ... गौतम कंट्रोल योर सेल्फ़।"

गौतम शिखा कुटीर का नज़ारा ही कुछ और था। गेट के बाहर पुलिस की जीप और अंदर लम्बे चौड़े कंपाउंड में लोग ही लोग। बीच में स्ट्रेचर पर सफ़ेद कपड़े से ढँकी दीपशिखा की लाश। खंभे से लगा खड़ा गौतम... बस, और सब अड़ोसी, पड़ोसी, पुलिस के आदमी। वह ख़ामोशी से गौतम की पीठ सहलाने लगी। कुछ सूझ नहीं रहा था क्या करें? चकित, व्याकुल और अविश्वसनीय सी मन की हालत हो रही थी। यह आख़िर हुआ क्या? तभी पुलिस इंस्पेक्टर उसके पास आया- "मैडम, आप इनकी रिश्तेदार हैं?"

"नहीं, मैं इनकी सहेली हूँ।" मुश्किल से कह पाई वह।

"ओ.के., आप इनके सम्बन्धियों को ख़बर कर दें। हम लाश को पोस्टमार्टम के लिये ले जा रहे हैं। बॉडी शाम तक ही मिल पायेगी क्योंकि सभी कानूनी औपचारिकताएँ करनी पड़ेंगी।"

"आप बंगला क्यों सील कर रहे हैं?" शेफ़ाली ने हिम्मत कर पूछा।

"इनके रिश्तेदारों के आने के बाद हमबंगलाखोल देंगे।"

लाश एंबुलेंस में रख दी गई थी। दरवाज़ा धड़ाक् से बंद हुआ जैसे सीने पर किसी ने ज़ोर का घूँसा मारा हो..... तीन दिन पहले तक जीती जागती, फोन पर उससे बतियाती दीपशिखा आज निश्चल बेजान बंगले से ऐसे जा रही है जैसे कोई फ़ालतू सामान, जिसकी अब ज़रूरत नहीं रही। वह भी लगभग सड़ चुकी हालत में। लाश की बदबू कंपाउंड से हवा आहिस्ता-आहिस्ता उड़ा ले चली जितने आहिस्ता इस कंपाउंड के बगीचे में लगे फूल महकते हैं। मह-मह..... और हवा को रूमानी बना देते हैं। रात को बंगले की सड़क से गुज़रने वाला हर मुसाफ़िर

पल भर रुक कर रातरानी की सुगंध ज़रूर अपनी साँसों में भर लेता है और सुबह की सैर पर निकले लोग पारिजात की खुशबू को। आज वहाँ सड़ चुके बदन की बदबू है... उन हाथों की जिन्होंने इन फूलों के पौधों को रोपा था।

"वह अगले महीने की बीस तारीख़ को लंदन के डॉक्टर के पास उसे लेकर जाने वाला था। तुषार ने ही अपॉइंटमेंट दिलाया था। मैं ऑफ़िस के कामों में ऐसा उलझा रहा कि जिस वक़्त उसे मेरी सबसे ज़्यादा ज़रुरत थी मैं उससे दूर रहा। मेरे ही साथ क्यों होना था ये सब?"

गौतम की वीरान आँखों में एक रेगिस्तान सा नज़र आ रहा था... जहाँ सिर्फ रेतीले ढूह होते हैं, जीवन नहीं होता। शेफ़ाली गीता के कर्मयोग की हामी... लेकिन इस वक़्त वह भी हिल गई थी अंतरमन के कोने टूटी काँच से झनझना उठे थे। बाजू में खड़ी ग़ज़ालारो रो कर हलकान हुई जा रही थी। "तुम कहाँ थीं तीन दिन से?" शेफ़ाली ने उसके कंधे झँझोड़ डाले थे। वह रोते-रोते बताने लगी- "मालकिन ने मुझे सर के दिल्ली जाते ही बाहर निकालकर यह कहते हुए दरवाज़ा बंद कर लियाकिफ़ौरन घर जाओ... सूनामी आने वाला है। अमेरिका से मेरे पास फोन आया है कि घर से मत निकलना... तुम भी मत निकलना जब तक मैं फोन न करूँ।"

"और तुम उसके फोन का इंतज़ार करती रहीं... बेवकूफ़ जानती नहीं थी क्या कि उसका अकेले रहना कितना ख़तरनाक है?"

फिर बरामदे के छोर पर खड़े लॉन की सफाई करने वाले लड़के और वॉचमैन दोनों पर बरस पड़ी शेफ़ाली। लड़का थर थर काँपते हुए बोला- मुझे दो दिन से बुखार आ रहा था। आज सुबह ही सफ़ाई के लिये आया तो देखा दरवाज़े के बाहर दूध के पैकेट और अखबार ज्यों के त्यों पड़े हैं... घंटी बजाई... देर तक बजाता रहा। दरवाज़ा नहीं खुला तो मैं वॉचमैन के बूथ की ओर दौड़ा। ये नहीं था वहाँ।"

"अरे थे कैसे नहीं... अब बाथरूम आथरूम के लिये आदमी नहीं जाता क्या? जब तक लौटे यहाँ तो हंगामा मचा था।"

“झूठ बोलता है ये... ये कहीं नहीं था। मैं ही पड़ोसियों को बुला लाया, पुलिस को ख़बर की गई। दरवाज़ा तोड़ा गया।”

अकेली मौत से जूझती रही दीपशिखा? इतने नौकर चाकर, गौतम, शेफ़ाली सब के होते हुए भी वह अपनी ज़िन्दग़ी के अन्तिम पड़ाव में नितान्त अकेली पड़ गई। क्या पता पानी के लिए तड़पी हो... क्या पता गौतम को पुकारा हो। गौतम और शेफ़ाली टूटी शाख़ों की तरह वहीं कुर्सियों पर गिर पड़े। ग़ज़ाला जल्दी-जल्दी फोन पर सबको ख़बर दे रही थी। मारे पछतावे के उसके आँसू थम नहीं रहे थे। मन कर रहा था अपना सिर दीवाल पर दे मारे। इतने सालों से उसने तन मन से मालकिन की सेवा की। वह उनका मानसिक रोग भी जानती थी फिर भी उनकी बातों में आ गई? सारे किये धरे पर पानी फिर गया। उसने गौतम सर का भरोसा तोड़ा है... अब इस दाग़ को ज़िन्दग़ी भर ढोना है।

बरामदे के खूबसूरत खंभे पर जूही की बेल माशूका सी लिपटी थी और फुनगियों पर फूल महक रहे थे। गौतम ने खंभे पर अपना सिर टिका दिया। उस पर जैसे जुनून सा चढ़ गया था- "मेरी शिखा फरिश्ता थी। उसने उस वक़्त मुझे सम्हाला जब मैं अपने अवसाद में गहरे पैबिस्त था। उसने मुझे अपने प्रेम और विश्वास के पंख दिये ताकि मैं अपनी ज़िन्दग़ी में फ़िनिक्स पक्षी की तरह आसमान में उड़ सकूँ। अपनी मानसिक बीमारी के चलते, बल्कि पूरी तरह बरबाद हो चुकी खुद की ज़िन्दग़ी के चलते उसने मेरी ज़िन्दग़ी को मक़सद दिया, जीने का हौसला दिया। आज वह रेशा-रेशा बिखर गई और मैं कुछ नहीं कर पाया।”

शेफ़ाली ने उसकी बाँह पर अपना हाथ रखा। पल भर ख़ामोशी रही- “चलो घर चलते हैं, अब यहाँ पुलिस का पहरा है, रुक कर करेंगे भी क्या?”

“मुझे यहीं रहने दो... काश, मैं भी उसके साथ चला जाता इस दुनिया से।”

“चलो, उठो... अब हमारे पास इंतज़ार के सिवा कोई चारा नहीं है।” शेफ़ाली ने उसे सहारा देकर उठाया। ग़ज़ाला ने सवालिया नज़रों से शेफ़ाली की ओर देखा। उसकी आँखों में गहरा पछतावा था।

"तुम सुबह शाम बंगले का चक्कर लगा लिया करो। जब देखो ताला खुला है आ जाना।"

वह तुषार के फोन का भी इंतज़ार कर रही थी। घर पहुँचते-पहुँचते फोन आ गया- "चार बजे तक पहुँच जाऊँगा।" तसल्ली हुई। काकी चाय ले आई। गौतम ने खाने से मना कर दिया।

"दो बिस्किट खाकर चाय पी लो गौतम... यही ईश्वर की मर्ज़ी थी... इतना ही जीना था दीपू को... हम कर भी सकते हैं। यहीं आकर सब कुछ फेल हो जाता है और ज़िन्दग़ी से विरक्ति हो जाती है। फिर भी अन्तिम साँस तक तो जीना पड़ेगा न गौतम।"

और गौतम के सब्र का बाँध टूट गया। सुबह से ज़ब्त किये था जिस बाढ़ को वह आँसू बन बह चली। शेफ़ाली ने रो लेने दिया। ज़रूरी था रोना वरना ये बोझ हमेशा के लिए कुंठा में तब्दील हो जाता।

तुषार के आते ही तीनों मुर्दाघर की ओर रवाना हुए। लेकिन लाश मिलने के आसार कम ही नज़र आ रहे थे। पुलिस उनके इस तर्क से सहमत नहीं थी कि दीपशिखा का कोई रिश्तेदार नहीं है हालाँकि अभी तक किसी ने बॉडी क्लेम नहीं की थी। कितनी अजीब बात है कि जो गौतम दीपशिखा के लिए सब कुछ था आज उसी को दीपशिखा की लाश सौंपने में पुलिस आनाकानी कर रही है क्योंकि कोई सामाजिक या धार्मिक रिश्ते की मोहर उनके सम्बन्धों में नहीं लगी थी। उन्होंने बिना शादी किये जीवन को स्वच्छन्द भाव से जिया था। दोनों बरसों से साथ रह रहे थे। हर पीड़ा, हर खुशी दोनों ने साथ साथ जी थी। दीपशिखा की मानसिक बीमारी को लेकर भी गौतम कहाँ-कहाँ नहीं दौड़ा था। देश-विदेश के हर उस डॉक्टर को दिखाया था जहाँ से थोड़ी सी भी संभावना नज़र आती थी। मगर आज दीपशिखा और गौतम ने पश्चिमी जीवन मूल्यों वाले उस लिव इन रिलेशन की कीमत चुकाई है जिसकी ओर हमारा समाज ललचाई नज़रों से देखता है लेकिन वास्तविक जीवन में कभी स्वीकार नहीं करता। यह कैसी विडंबना है कि सच्चे साथी के बावजूद मृत्यु के समय दीपशिखा के न तो कोई सिरहाने था न पायताने और अब उसके दाह संस्कार के लिये भी सवालउठ खड़े हुए थे। तो क्या जिसका कोई नहीं होता उसका कोई सामाजिक महत्व नहीं जबकि रिश्तों की आँच में धीमे-धीमे न जाने कितनी ज़िन्दगियाँ सुलगती हैंउम्र भर।